एस मग्गे आरिएहि पवेइए

(प्रो. श्री कल्याणमल लोढ़ा)

आचार्य समन्तभद्र का कथन है -

देवागमनभोयान-चामरादिविभूतयः ।

मायाविष्वपि दृश्यन्ते, नातस्त्वमसि नो महान् ।।

देवों का आना, गगन विहार, छत्र-चामर आदि विभूतियाँ ऐन्द्रजालिक व्यक्तियों को भी संभव है - आपके पास देवता आते थे, छत्र-चामर एवं यौगिक विभूतियों से सम्पन्न थे, इसलिए आप महान् नहीं - आपकी महानता यह है कि आपने सत्य को अनावृत किया । सत्य को अनावृत करना, उसका परम रहस्य उद्घाटित करना ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । वही दिव्य पथ का पाथेय है । ऋषियों ने यही उद्घोष किया था -

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्

तत्वंपूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये । -ईशावास्योपनिषद् । ५ ।

यह कौन सा सत्य है, जिसको पाने पर और समझने पर कुछ शेष नहीं रहता । भगवान महावीर ने किस सत्य का संधान किया था । आचार्य हेमचन्द्र ने भी कहा -

क्षिप्येत वान्यैः सदृशीक्रियेत वा
तवांध्रपीठे लुठनं सुरेशितुः ।
इदं यथावस्थित वस्तुदेशनंम्,
परैः कथं कारमपाकरिष्यते ।। -

इन्द्र आपके पाद-पद्मों में लोटते थे, यह दार्शनिकों द्वारा खंडित हो सकता है - वे अपने इष्टदेव को भी इन्द्रजित कह सकते हैं, पर आपने जिस परम यथार्थ का निरूपण किया है वह तो सदैव निर्विवाद है । प्रश्न उठता है वह यथार्थ क्या है ? जो शाश्वत है । भगवान महावीर हमें बारबार स्मरण कराते हैं कि सत्य से युक्त पुरुष धर्म को ग्रहण कर श्रेय समझता है - इसी से उनका आदेश है : "हे पुरुष ! सत्य को अच्छी तरह जानो, सत्य की आराधना ही धर्म की आराधना है, क्योंकि सत्य में रत बुद्धिमान मनुष्य सब पाप-कर्मों का क्षय कर देता है -

"सच्चं मि मेहावी कुव्वहा"-आचाराङ्ग ।

इस पर विचार करने के पूर्व मैं स्पष्ट कर दूं कि वही धर्म - वही दर्शन - वही अध्यात्म सर्व स्वीकृत और देशकालातीत हो सकता है, जो व्यष्टि के साथ समष्टि के भी मंगल का आधार हो । जो व्यक्ति के लिए भी परम मान्य हो पर साथ में हो लोकसिद्ध भी । जैन धर्म को प्रायः व्यक्तिनिष्ठ धर्म कहा जाता है - यह समीचीन नहीं । वह जितना व्यक्तिनिष्ठ है, उतना ही लोकनिष्ठ भी । यह ठीक है कि वीर प्रभु ने सामाजिक व्यवस्था का कोई विधान नहीं किया । सामाजिक परम्परा और अवधारणा को परिवर्तशील बताया पर - जिन शाश्वत नैतिक मूल्यों की उन्होंने व्याख्या की वे व्यक्ति और समाज दोनों के लिए समानरूपेण हितकर हैं । वे लोक भाषा को अपना कर लोकमानस के सर्वाधिक निकट पहुँचे - उन्होंने भाषायी अहंकार को नष्ट किया और आचार धर्म को ही मुख्य गिना । समाज की आन्तरिक चेतना को नवीन जागृति दी । उनका धार्मिक प्रतिपादन और फल वर्तमान से सन्निविष्ट था - उन्होंने बताया कि जिस क्षण धर्माचरण होता है उसी क्षण कर्म का भी क्षय होता है । उमास्वाती ने इसी से कहा कि धर्म से उपलब्ध सुख प्रत्यक्ष है । उनका कथन है –

निर्जितमदमदानां वाक्कायमनोविकासहितानाम्

विनिवृत्तपराशानामिहैव मोक्षः सुविहितानाम् ।

-प्रशमरतिप्रकरण - २३८ ।

अर्थात् जो व्यक्ति जाति, कुल, बल, रूप वैभव और ज्ञान-मद को निरस्त करता है, काम-वासना पर विजय पाता है - विकृतियों से रहित होता है - आकांक्षाओं से हीन होता - उसे इसी जन्म में उसी क्षण मोक्ष होता है । यह प्रत्यक्ष उपलब्धि मनुष्य को भविष्य से अधिक वर्तमान के प्रति आश्वस्त करती है । उसकी उपयोगिता जितनी आध्यात्मिक है, उतनी ही जागतिक भी । श्रेयस की साधना ही धर्म है - यही है आत्म प्रकाश और चैतन्य का पूर्ण आलोक । भगवान ने बताया शाश्वत धर्म है - किसी भी प्राणी का अतिपात न करो उपद्रुत - न करो - परितृप्त न करो - अधीन मत करो । महावीर का यह उपदेश, अहिंसा का यह उद्घोष आत्मोदय और लोकोदय दोनों दृष्टियों से मान्य है । आचार्य समन्तभद्र ने इसी से जिन शासन को सर्वोदय कहा –

सर्वान्तवद् तद् गुण-मुख्य कल्पं
सर्वान्तशून्यञ्च मिथोऽनपेक्षम्
सर्वापदामन्तकरं निरन्तं
सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव ।-

अब लोकोदय या सर्वोदय की व्यावहारिक दृष्टि से जैन धर्म को उपयोगिता देखें । जैन धर्म आचार विचार को महत्व देता है, यही मानवीय नैतिकता की आधारशिला है । वैष्णव धर्म में जो महत्व गीता का है, बौद्ध धर्म में धम्म पद का - वही महत्व जैन धर्म में उत्तराध्ययन का है, वह जैन धर्म की गीता है । जैनाचार्यों ने आचार के भिन्न-भिन्न अर्थ किए हैं । आचार्य अभयदेव ने तीन अर्थ आचरण, आसेवन और व्यवहरण किया है । स्थानाङ्ग (२/७२) में उसे श्रुतकर्म और चारित्र धर्म कहा है । उमास्वाती आचार को सम्यग् दर्शन सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चारित्र गिनते हैं ।

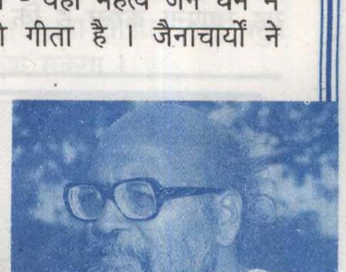

उत्तराध्ययन के अनुसार -

आशा तज कर अन्य की, एक आश अरिहन्त ।
जयन्तसेन करे सदा, जन्म मरण का अन्त ।।

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

नोरांचदसणं येव, चरित्तं च तवो तहा ।

उसमें तप को भी सम्मिलित किया है । स्थानाङ्ग में उसके पाँच भेद- ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चरित्राचार, तपाचार व वीर्याचार किए गए हैं । इन भेदों की तात्विक व्याख्या में न पड़कर यही कहना पर्याप्त है । आचार का अर्थ है - "आचर्यते इति आचार :" - आचरण ही आचार है - अर्थात् सदाचार । हलायुध कोश के अनुसार "विचार" भी आचार का ही एक रूप है । भारतीय मनीषियों ने "आचारः प्रथमो धर्मः" कह कर उसे प्रथम धर्म माना । भगवान महावीर के अनुसार भी : "आचारः प्रभवो धर्मः"- आचारहीन मनुष्य कभी पावन नहीं होता क्योंकि "आचारात् प्राप्यते विद्या" । मनु का स्पष्ट कथन है - "सर्वस्य तपसो मूलाचारं जगृहुः परम् । आचार ही सदाचार है । मानवीय नीतिबोध ही आचार है : नीति शब्द णीञ् (प्रापणे) इस धातु से "अधिकरण" अथवा "करण" इस अर्थ में "क्तिन्" प्रत्यय जोड़कर व्युत्पन्न होता है । "नी" का अर्थ है "ले जाना" । मनुष्य को सत्य दिशा की ओर ले जाना ही नीति का अर्थ है - नयनान्नीतिरुच्यते । नयन व्यापार करता है - ले जाता है दुष्प्रवृत्तियों से सद्प्रवृत्तियों की ओर - व्यक्ति को लोकमंगल की ओर । नीति ऐहिक और पारलौकिक कल्याण का साधन है । वेद के अनुसार - ऋजु नीतिनो वरुणो मित्रो नय तु विद्वान् (१-९०-१) । मित्र वरुण हमें कुटिलता रहित नीति का सुफल दें । अब जैन धर्म में आचार के व्यावहारिक स्वरूप को देखें । भगवान महावीर ने मनुष्यत्व को ही प्रधानता दी । महावीर के अनुसार प्राणियों के लिए चार अंग दुर्लभ हैं - मनुष्यत्व, सद्धर्म, श्रद्धा और संयम । उदाहरण लें - उत्तराध्ययन का कथन है "एवं भाणुस्सगकामा- देवकामाण अन्तिए (७-१२) वे कहते हैं देवताओं में कामभोग मनुष्य से हजार गुणा अधिक है । जैन धर्म के अनुसार मनुष्यत्व ही मानवीय नैतिकता का मूलाधार हैः चारित्र, त्याग, दया, प्रेम, और सेवा ही मनुष्यत्व के मापदण्ड हैं । भगवान महावीर ने अपने अन्तिम प्रवचन में मानवीय जीवन की सर्वोच्चता बताते हुए कहा - "माणुस्सं खु सु दुल्लहं", मनुष्य जीवन बड़ा दुर्लभ है । उन्होंने बताया -

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जन्तुणो ।

माणुसत्तं सुई सद्धा, संजयमि य वीरियं ॥ (उत्तराध्ययन ३-१)

मनुष्य से महत्वपूर्ण मनुष्यता है - वही जीवन का अलभ्य वरदान है । उन्होंने बल दिया प्रकृतिभद्रता, मन, वचन और क्षमा की सरलता - कर्तव्यनिष्ठा और सत्य की आन्तरिक सच्ची अनुभूति पर । इसी से विश्व चेतना का विकास सम्भव है - और यही मानव धर्म है, यही मनुष्यत्व है, इससे ही आत्मदर्शन सम्भव है । भगवान महावीर मनुष्यों को "देवाणुप्पिय" कहकर सम्बोधित करते थे । आचार अमितगति के अनुसार - मनुष्यं भव प्रधानम्" मानुष सत्य ही सर्वश्रेष्ठ है । जैन धर्मानुयायी इस मनुष्यत्व की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करता है -

सत्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ
सदायमात्मा विदधातु देव ॥

भारतीय धर्म साधना का यही परम लक्ष्य है - 'मनुर्भव' । मनुष्य बनो । वैदिक आदेश है - "ज्योतिर्गतः पथोरक्षः धिया - कृतान्" । बुद्धि से परिष्कृत ज्योतिमार्ग की रक्षा कर "मानुमन्बिहिं - प्रकाश पथ पर चल । यह प्रकाश पथ तभी मिलता है जब बिना किसी भेदभाव के सभी जीवों के साथ मैत्री, करुणा और समता से तादात्म्य हो । जो जीव-व्यक्ति सर्वात्मभूत है - सब प्राणियों को अपने हृदय में बसाकर विश्वात्मा बन गया है, उसके लिए न तो अन्धकार है - और न पाप ।

सव्व भूयप्प भूयस्स सम्मं भूयाइ पासओ ।

पिहिआसवस्स दं तस्स पावकम्मं न बंधइ - दशवैकालिक ४

इस विराट सत्य की उपलब्धि तभी हो सकती है, जब व्यक्ति में आत्मिक समानता हो । मेरी दृष्टि में यही महावीर का प्रथम सिद्धान्त है । समता का बोध ही धर्म है -

समियाएं धम्मो आरएहि पवेइए ।

यही समत्व जीवन के सारे वैषम्य को समाप्त कर अहिंसा का सात्विक उद्रेक करता है । महावीर ने मनुष्य को आत्मनिर्णय और आत्मानुशासन का अधिकार दिया । उन्होंने आत्मवाद के साथ-साथ सापेक्षता (स्याद्वाद) की राह बतायी । प्रेम, मैत्री, करुणा, प्रमोद, अपरिग्रह का यही रहस्य है । मनुष्य में इन सद्गुणों के विकास के लिए आवश्यक है कि वह हिंसा, प्रमाद, राग, द्वेष, मोह, मिथ्यात्व, घृणा, क्रोध आदि से मुक्त हो । कषाय जीवन की ऊर्ध्व गति और उसके विकास में बाधक हैं । महावीर ने न

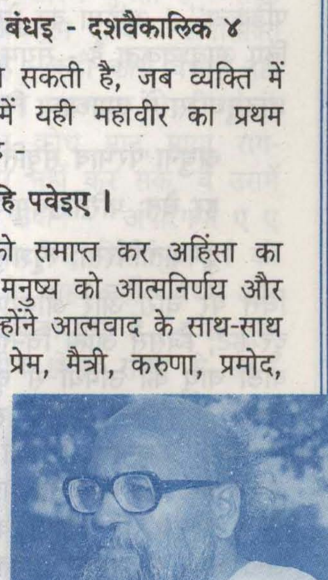

प्रो. श्री कल्याणमल लोढ़ा

जोधपुर विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति । १९५९ से १९७९ तक कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिन्दी के संकायाध्यक्ष एवं सांस्कृतिक भाषा मंडल के अध्यक्ष। राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी के कार्य विकास के संसाधनों व विधियों की अनुशंसा के लिए गठित एक व्यक्ति जांच आयोग में नियुक्त । कई विश्व विद्यालयों के सलाहकार तथा विशेषज्ञ के रूप में कार्य किया । कई शैक्षिक प्रवृत्तियों व संस्थाओं से सम्बद्ध । कई राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं से सन्मान एवं पुरस्कार प्राप्त । भारतीय आधुनिक साहित्य पर लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान, लेखक, कुशल-वक्ता । कई विश्वविद्यालयों के सेमीनारों में विस्तार से भाषण ।

सम्प्रति - २-ए, देशप्रिय पार्क ईस्ट, कलकत्ता - ७०० ०२९.

देव सदा अरिहन्त को, ध्यावे जो दिन राज ।
जयन्तसेन जनम सफल, दुष्कर्मोका घात ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाने कितनी बार इन दोषों के प्रति हमें सचेत किया - कहा - ''महुत्तम वि न पमायए'' तू मुहूर्त के लिए भी प्रमाद न कर। एक पौराणिक घटना का उल्लेख भी कर दूँ। लक्ष्मी को एक बार पथ में बैठी देख कर इन्द्र ने पूछा - ''आजकल आप कहाँ रहती हैं।'' उसका उत्तर था -

गुरवो यत्र पूज्यन्ते वाणी यत्र - सुसंस्कृता।

अदन्तकलहो यत्र, तत्र शक्र वसाम्यहम् ॥

अर्थात् मैं वहां रहती हूँ जहाँ प्रेम का अखण्ड राज्य है, - समाज में कलह-कोलाहल नहीं है, जहाँ करुणा और मैत्री है, सहकारिता है - एक प्रकार से यह उत्तर जैन धर्म के नैतिक प्रत्ययों को स्पष्ट करता है। मानव-जीवन में यह नैतिक बोध तभी सम्भव है जब संकल्प और श्रद्धा का अडिग बल प्राप्त हो - कहा भी है - ''श्रद्धा प्रतिष्ठा लोकस्य देवो'' । वीरप्रभु कहते हैं ''श्रद्धा परम दुल्लहा''। प्राणिमात्र में जिजीविषा प्रबल है। सबको जीवन प्रिय है - आज तो विज्ञान ने यह भी सिद्ध कर दिया कि पेड़-पौधों, लता-पुष्पों सबमें वही प्राण-प्रियता और जिजीविषा है, जो मनुष्य में है। वर्तमान काल में वैज्ञानिकों द्वारा की गयी गवेषणाएँ इसका प्रमाण है। इसीलिए कहा भी है -

अभेध्यमध्यस्य कोटस्य सुरेन्द्रस्य सुरालय।

सदृशो जीवने वांछा तुल्यं मृत्युभयं द्वयोः ॥

महावीर की अहिंसा का यही सिद्धान्त है। आचाराङ्ग में उन्होंने हिंसा की विभिन्न स्थितियों का वर्णन किया है - सर्वप्राणी, सर्वभूत, सर्वजीव, सर्व तत्त्वों, को असत् अप्रिय है, महाभय का कारण दुःख है। महावीर ने कहा -

सव्वे जीवा विइच्छन्ति जीविउं नमरिजिउं

तम्हा पारि वहं कोरं निग्गंथा वज्जयंतिणं ॥

सभी सुख चाहते हैं - दुःख नहीं, ''सव्वेपाणो सुहसाया दुह पडिकूला'' । अहिंसा का ऐसा यह दर्शन अन्यत्र दुर्लभ है। इसके लिए आवश्यकता है - संयम, विवेक और समत्व की।

शांतसुधारस में उपाध्याय विनयविजय लिखते हैं :

अधुना परभाव संवृति

हर चेतः परितोऽवगुण्ठिताम्

द्रुमवातोर्मिरसाः स्पृशन्तु माम्।

चित्त पर चारों ओर आवरण डालने वाली परभाव की कल्पना से दूर हटे, जिससे आत्म चिन्तत रूपी चन्दन वृक्ष का स्पर्श कर आने वाली वायु की उर्मियों से चूने वाले रस-कण क्षण भर के लिए छू जाएं। सार तत्व है ''जो समोसत्वभूदेसु थावरेसु तसेसुवा'' । यह समभाव 'कथनी' से नहीं 'करनी' से आता है - ''भणन्ता अकरेन्ताय बंध मोधक्ख पइण्णिणे'', वाया विरिय मेत्तेण समासा सेन्ति अप्पयं'' । आत्मा की गहराइयों तक पहुँचने से, विशुद्ध अन्तःकरण से रागद्वेष रहित जीव का अनन्य परिणाम है - आत्म दर्शन। आचार्य सोमदेव ने व्यक्ति के साथ-साथ सामाजिक जीवन में भी समभाव के आचरण को प्रतिष्ठित करने के लिए कहा - ''सर्वा सत्वेषु' हि समता सर्वाचरणानां परमाचरणम्'' । जैन दर्शन में नैतिकता का आधार यही समभाव है - उसकी उपलब्धि होती है - ज्ञान, सदाचार, तप, शील और संयम से - ''आयओ बहिया पास तुम्हा न हंता न विधाइए'' - दूसरे प्राणियों को आत्मा तुल्य देखना आवश्यक है। समभाव की यह प्रमुखता प्रायः सभी भारतीय धर्म और दर्शन में मिलती है, पर जैन धर्म में उसका विशेष उपयोग है। इसने जैन धर्मानुयायियों को उदार और विनय सम्पन्न बना दिया। उदारता की मूल भित्ति जीवन की उन महान प्रक्रियाओं से अनुस्यूत होती है, जहाँ मान्यताओं में न तो पूर्वाग्रह रहता है और न संकीर्ण मनोभाव। जैनाचार्यों ने इसी उदारता का उद्घोष किया है। पंचपरमेष्ठि को ही लें - इसमें न तो कहीं तीर्थंकर का नामोल्लेख है और न धर्म का ही - जो भी अरिहंत हैं, सिद्ध हैं, आचार्य उपाध्याय और साधु हैं - उन सबको नमस्कार है। उदार चरित्र वाले ही वसुधा को अपना कुटुम्ब समझ सकते हैं। आचार्य हरिभद्र, आचार्य सिद्धसेन व आचार्य हेमचन्द्र आदि अनेक आचार्यों ने इसी उदारता का प्रमाण दिया।

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु

युक्तिमद् वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः।

इस उदार दृष्टिकोण के साथ ही विनय का नैतिक गुण जुड़ा है। जैनधर्म काय, वाचिक और मानसिक विनयशीलता पर जोर देता है। विनय ही धर्म का मूल है। ''धमस्स विणओ मूल'' जैन धर्म की मान्यता है कि 'विणओ मोक्खद्वारं, विणयादा संजमो तवो णाणं' - विनय ही मोक्ष का द्वार है। विनय से ही संयम, तप और ज्ञान सम्भव है क्योंकि विनय से चित्त अहंकार शून्य होता है - सरल, विनम्र और अनाग्रही। उदारता और विनय आचार-विचार के दो नैतिक मूल्य हैं।

जैनधर्म ने जिस प्रकार समत्व, औदार्य और विनय को महत्व दिया - उसी प्रकार संयम, क्षमा, आर्जव, मार्दव को भी। धर्म के चार द्वार हैं - क्षमा, सन्तोष, सरलता और विनय। आचार्य कुंद कुंद ने द्वादशानुपेक्षा में दश धर्म इस प्रकार बताए हैं : क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य। क्रोध आत्मा को संज्वलित करता है। आज यह प्रमाणित हो गया है कि क्रोध आधि-व्याधि का कारण है - उसका हनन अपेक्षित है। इसमें डॉ. विलियम्स का मत द्रष्टव्य है। ''भवति कस्य न कार्यहानिः'' - क्रोध किसकी हानि नहीं करता। क्षमा बैर का नाश करती है - समस्त जीवों से क्षमा मांगना अन्तर्बाह्य की निर्मलता का प्रमाण है। ''मृदोर्भावः मार्दवम्'' मार्दव, कोमलता व आर्जव ऋजुता है, अर्थात् सरलता व सहजता। शौच अनासक्त भाव है। वह लोभ का निराकारण है - जहाँ लाभ है, वहाँ लोभ है - ''जहा लाहो तहा लोहो'' । लोभ और लाभ एक-दूसरे से जुड़े हैं। शौच उन्हें निरस्त करता है ''सोयं अलुद्धा धम्मो वगरणुसवि'' । सत्य ही प्रज्ञा है। जैन धर्म कहता है ''पन्ना समिक्खए धम्मं'' - प्रज्ञा से ही धर्म की मीमांसा सम्भव है। महावीर कहते हैं-मुनि! लोक के स्वरूप सत्य की खोज

प्रीत भली अरिहन्त की, करो सदा सुखकार।
जयन्तसेन निश्चल मति, पावत जलनिधि पार ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करो । सत्य-साधना अन्तःकरण को निर्मल बनाती है । आचार्य समन्तभद्र ने जिस सत्य को अनावृत्त करने का उल्लेख किया है, उसका आधार है विचार और विवेक से बोलना, क्रोध का परित्याग करना, लोभग्रस्त न होना, निर्भय रहना और हँसी न करना । ये ही सत्यव्रत की पाँच भावनाएँ हैं । दशवैकालिक ने चार आवेगों का दमन इस प्रकार बताया गया है - क्रोध का उपशम से मान का मृदुता से, माया का ऋजुता से और लोभ का सन्तोष से । वीरप्रभु ने कहा आचार शुद्धि के लिए आहार शुद्धि आवश्यक है और विचार शुद्धि के लिए आचार शुद्धि । अहिंसा के पश्चात् सत्य द्वितीय महाव्रत है । संयम वह नैतिक गुण है, जिसके बिना आत्मोपलब्धि सम्भव नहीं । संयम आन्तरिक वृत्ति की पवित्रता और इन्द्रियों का अन्तर्मुखी प्रवाह है । उमास्वाती ने "तत्त्वार्थ सूत्र में" संयम पर विशेष प्रकाश डाला है । भगवान महावीर ने आदेश दिया -

जयंचरे जयं चिट्ठे जयमासं जयं सए ।

जयं भुंजन्तो भासन्तो पावकम्मंन बंधइ ॥

मन, वचन और कर्म की सावधानी संयम है ।

जैनधर्म मनुष्य को नैतिक मूल्यों से जोड़ता हुआ, उसे आत्मदर्शन की प्रज्ञा भूमिका पर ले जाता है । आज मनुष्य विवेकहीन हो गया है - विवेकहीनता उसे स्पर्धा, स्वार्थ, सत्ता और सम्पत्ति, हिंसा, मोह, लोभ, तृष्णा, दुर्भाव, कषाय की ओर ले जाकर पाशविक बना रही है । - यह अराजकता जितनी बाहर है उतनी ही भीतर । प्रदूषण की विभीषिका जहाँ समूचे पर्यावरण को नष्ट कर रही है, वहाँ मनुष्य के अन्तःकरण को भी । अधिकार-लिप्सा के आगे कर्तव्यनिष्ठा समाप्त हो गयी है । आज वैज्ञानिक भी अपनी प्रयोगशाला से परे यह निर्द्वन्द्व भाव से स्वीकार करते हैं कि विश्व-शांति की संभावना विज्ञान और तकनीकी जड़ शक्ति से संभव नहीं । वह संभव है अध्यात्म की प्रेरणा से और मानवीय जीवन की नैतिक उच्चता से । जैनधर्म की अर्थवत्ता मनुष्य को पुनः मनुष्यत्व की नैतिक उच्चता और अध्यात्म की ओर ले जाने में है । भगवान महावीर ने जो क्रान्ति की थी, वह उसके अन्तर्बाह्य को सत्याभिमुख करने की थी । उसकी पाशविकता को समाप्त कर जीवन में पूर्णता की उपलब्धि को । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य को, वीरप्रभु ने जिन नैतिक मूल्यों को, मनुष्य के आचरण के लिए अनिवार्य बताया था - आज विश्व के सभी चिन्तक उन्हें ही सर्वतोभावेन स्वीकार करते हैं । आधुनिक नीतिशास्त्र का आत्मप्रसादवाद (इयूड्योमोनिज़्म) इसका उदाहरण है । नैतिक उच्चता व्यक्ति के मानसिक, वैयक्तिक और सामाजिक सहकारिता और सामंजस्य से ही संभव है । मानवीय पूर्णता के लिए उसके संवेगों और कषायों पर बौद्धिक नियंत्रण आवश्यक है । आधुनिक नीतिशास्त्र व्यक्ति के आचरण के लिए मूल्य चैतन्य को अनिवार्य गिनता है । इसी प्रकार अन्य सिद्धान्त "मिल्योरिज्म" का है । इसकी मान्यता है कि मनुष्य अपने आत्मिक विकास से जीवन को उच्चतम बना सकता है । यही आत्मदर्शन की स्थिति है । इस सिद्धान्त के अनुसार मानव मूलतः संत्रास, अवसादमय और नैराश्यपूर्ण नहीं है । मनुष्य अपने आचरण से अपना और अन्य व्यक्तियों का जीवन सुधार सकता है । जीवन में संघर्षों से जूझकर वह परम आत्मचैतन्य से संपृक्त हो अपना और लोक का जीवन नैतिक प्रत्ययों से पूर्ण कर सकता है, पर इसके लिए आवश्यक है आचार और विचार की उच्चता और सामाजिक अवस्था में आमूल परिवर्तन । आत्मविश्वास की यात्रा में क्लान्त होकर बैठना उचित नहीं । धर्म की परिपूर्णता उसके सदाचार, सद्व्यवहार और सद्गुणों पर ही आधृत है । मार्टिन लूथर की मृत्यु के पश्चात् उसके शव को उसकी पत्नी ने महात्मा गांधी के चित्र के नीचे रखा क्योंकि वे अहिंसा, सत्य, मैत्री, प्रमोद, करुणा और मानवीय समता के मूर्त रूप थे । आधुनिक, नैतिक चिंतन को प्रायः दो प्रकार से आंका जाता है - पारंपरिक नैतिक मूल्य और आलोचनात्मक नैतिक मूल्य । एक शास्त्र सम्मत जीवन प्रक्रिया के लिए है और दूसरा सत्य के संधान का सनातन पक्ष । कहना न होगा कि भगवान महावीर के नैतिक मूल्य - आचार सिद्धान्त इन दोनों का पूर्ण समन्वय है - सामंजस्य । उन्होंने हमारे आंतरिक और बाह्य व्यक्तित्व को जो आचार संहिता दी, वह देश कालातीत, सनातन और शाश्वत है । उन्होंने बताया कि बाह्य और आंतरिक स्त्रोतों के छेदन से ही पाप निष्कृत होते हैं । उनका कथन है कि केवल शास्त्रों के अध्ययन से व्यक्ति आत्म-लाभ नहीं कर सकता, उसके लिए आवश्यक है नैतिक रूपान्तरण । इसीलिए वीरप्रभु ने कहा "अप्पणा' सच्च मे सेज्ञा" तुम सत्य का स्वयं संधान करो । संसार में न कोई उच्च है और नीच - न श्रेष्ठ न हीन । सभी समान हैं । उनका स्पष्ट उद्घोष था -

"सक्खं खु दीसइ तवो विससे ।

न दीसइ जाइ विसेष कोइ ॥

जीवन में विशेषता साधना की है, जाति की नहीं, कर्म की है, जन्म की नहीं - "कम्मुणा बम्यणो होइ" और "समयाए समणो होइ" । महावीर कहते हैं - "प्रमत्त मनुष्य इस लोक और परलोक में सम्पत्ति से त्राण नहीं पा सकता, वह तो स्वार्थ का साधन है, परमार्थ का नहीं । सम्पदा महामय का कारण बनती हैं - संग्रह और परिग्रह की भावना में त्याग, अध्यात्म भाव - अनासक्ति नहीं । सही है कि हमारी यात्रा लम्बी है - कहीं कोई विश्राम नहीं अन्यत्र संबल नहीं, पाथेय नहीं । अपने आत्मबल से ही संसार सागर के तट पर पहुँचना है । जो लोभ, क्रोध, मान, माया, राग-द्वेष और इन्द्रियासक्ति की वैतरणी पार नहीं कर सके, वे उसमें डूब जायेंगे, भवसागर का पार नहीं पा सकेंगे - "अपारंगमा ए ए नो य पारंगमित्तए" इसे पार करने के लिए जिस पुरुषार्थ की आवश्यकता है, वह पुरुष के ही भीतर है, बाहर नहीं - बंधन और मुक्ति वहीं है - भीतर । उसे अन्यत्र खोजना वृथा है । दुःख सुख में समान भाव से रहने वाला प्रमादहीन होकर संयम से उत्तम चरित्र प्राप्त करता है । इसी से जैन धर्म श्रद्धा और संयम पर बल देता है । पुरुषार्थ भाव से संयम को सम्यक रूप से स्वीकार करना है । प्रभु ने हमें सचेत किया कि भाषा का दुराग्रह हेय है । बताया कि केवल विद्या या शास्त्र ही मनुष्य को

शेष भाग (पृष्ठ १३ पर)

ममता रख अरिहन्त से, समता उर में धार ।
जयन्तसेन वृत्ति यही, अन्तर मन का सार ॥

Jain Education International

For Private & Personal Use Only

www.jainelibrary.org